www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-6* *June 2025***

बिहार में पंचायती राज प्रणाली (1990–2015): एक सर्वेक्षण

सिंधी सूर्य

शोध छात्रा, इतिहास विसाग, बी.एन. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

डॉ0 स्वर्ण मणि

वरीय सहायक प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, टी० पी० कॉलेज, मधेपुरा

सारांश

1990 से 2015 के मध्य बिहार में पंचायती राज प्रणाली के विकास और प्रभाव का अध्ययन करना भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस कालखंड में पंचायती व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा मिलने के पश्चात् बिहार में स्थानीय स्वशासन की पुनर्स्थापना हुई, जो ग्रामीण विकास, सामाजिक समावेशिता तथा लोकतांत्रिक भागीदारी की दिशा में एक ऐतिहासिक परिवर्तन था। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम (1992) के बाद बिहार में पंचायती राज अधिनियम 1993 में लागू किया गया, जिससे ग्राम, पंचायत, प्रखंड और जिला स्तर पर सत्ता के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। 1990 के दशक में सामाजिक न्याय की राजनीति के उदय के साथ ही पिछड़े वर्गों, महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों–जनजातियों को पंचायतों में आरक्षण प्रदान किया गया, जिससे सत्ता का व्यापक आधार तैयार हुआ। वर्ष 2001 में हुए पहले पंचायत चुनावों ने ग्रामीण नेतृत्व के एक नए युग की शुरुआत की। महिला प्रतिनिधित्व को 50 प्रतिशत तक बढ़ाने का निर्णय विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा, जिसने नारी सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अवधि में पंचायतों को वित्तीय संसाधनों, योजनाओं और प्रशासनिक अधिकारों के हस्तांतरण की प्रक्रिया भी विकसित हुई, हालाँकि इसमें कई चुनौतियाँ भी उभर कर आईं, जैसे भ्रष्टाचार, प्रशासनिक अड़चनें तथा जन–जागरूकता की कमी। 2006 के बाद महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (डळछत्म्ळ।) तथा अन्य केंद्र व राज्य योजनाओं के क्रियान्वयन में पंचायतों की भूमिका बढ़ी, जिससे उनकी कार्यक्षमता व उत्तरदायित्व को एक नई पहचान मिली। परंतु पंचायतों में क्षमता निर्माण, सूचना का पारदर्शी प्रसार, और राजनीतिक दखल जैसे पहलुओं में अभी भी सुधार की आवश्यकता रही। 2015 तक बिहार की पंचायती राज प्रणाली एक स्थायी और क्रियाशील लोकतांत्रिक इकाई के रूप में विकसित हो चुकी थी, किंतु यह भी स्पष्ट हुआ कि इसके सशक्तिकरण के लिए निरंतर सुधारात्मक प्रयास आवश्यक हैं।

मुख्य शब्द– पंचायती राज, बिहार, 73वाँ संशोधन, ग्राम पंचायत, महिला प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय, विकेंद्रीकरण, स्थानीय स्वशासन, ग्रामीण विकास।

परिचय

भारत में पंचायती राज की परंपरा अत्यंत प्राचीन है, जिसकी जड़ें वैदिक काल के श्सभाश और श्समितिश जैसे जनसत्ता संगठनों से जुड़ी हुई हैं। किंतु आधुनिक भारत में पंचायती राज को संवैधानिक स्वरूप 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से प्राप्त हुआ। इस अधिनियम ने त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था को

कानूनी मान्यता दी और राज्यों को बाध्य किया कि वे ग्राम, मध्य और जिला स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना करें। बिहार में पंचायती राज प्रणाली का औपचारिक पुनःस्थापन 2001 में प्रथम चुनावों के माध्यम से हुआ, यद्यपि इसका अधिनियम 1993 में ही पारित हो चुका था। 1990 से 2015 के कालखंड को बिहार की राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक संरचना में परिवर्तन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यह वही दौर था जब सामाजिक न्याय की राजनीति का उदय हुआ, मंडल आयोग की सिफारिशें लागू की गईं और महिला, दलित एवं पिछड़ा वर्ग पहली बार सत्ता के विकेन्द्रित ढांचे में भागीदार बने। इस काल में पंचायती राज संस्थाओं को न केवल लोकतंत्र की नींव माना गया बल्कि इन्हें योजनाओं के कार्यान्वयन का मुख्य मंच भी बनाया गया। खासकर, मनरेगा, आवास योजना, स्वच्छ भारत मिशन जैसी योजनाओं के ग्राम स्तर पर क्रियान्वयन में पंचायतों की सक्रिय भागीदारी से इनकी प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई। इस संदर्भ में बिहार का अध्ययन अत्यंत उपयोगी है क्योंकि यहां पर पंचायती राज संस्थाओं का राजनीतिकरण, सामाजिक समावेश और प्रशासनिक दक्षता के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण संभव है। यह विषय वर्तमान में भी अत्यंत प्रासंगिक है क्योंकि ग्रामीण सशक्तिकरण, स्थानीय स्वशासन और लोकतांत्रिक भागीदारी को मजबूती देने के लिए पंचायतें एक सशक्त माध्यम हैं। इस शोध का मुख्य उद्देश्य 1990 से 2015 तक के कालखंड में बिहार में पंचायती राज प्रणाली के विकास, विस्तार, संरचनात्मक बदलाव और सामाजिक प्रभाव का समग्र मूल्यांकन करना है। शोध में द्वितीयक स्रोतों का व्यापक उपयोग किया गया है। इनमें बिहार सरकार के पंचायती राज विभाग की रिपोर्टें, भारत सरकार की पंचायती राज मंत्रालय की योजनाएं एवं मूल्यांकन रिपोर्टें, जनगणना आंकड़े, योजना आयोग के दस्तावेज, साथ ही प्रामाणिक भारतीय पुस्तकों एवं शोध–पत्रिकाओं के संदर्भ लिए गए हैं। अनुसंधान पद्धति के रूप में ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाया गया है।यह अध्ययन केवल घटनाओं के वर्णन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विश्लेषण करता है कि इन व्यवस्थाओं ने ग्रामीण राजनीति, समाज और विकास को किस प्रकार प्रभावित किया।[1]

बिहार में पंचायती राज का ऐतिहासिक विकास

बिहार की सामाजिक संरचना एवं प्रशासनिक परंपराएँ अत्यंत प्राचीन रही हैं, जिनमें ग्राम स्तरीय जनसत्ता की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही है। पंचायती राज की अवधारणा कोई आधुनिक आविष्कार नहीं, बल्कि यह भारतीय समाज की आत्मा में समाहित वह प्रणाली है जिसने ग्राम स्तर पर प्रशासनिक, न्यायिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन किया। बिहार जैसे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध प्रदेश में पंचायतों का स्वरूप समय के साथ बदलता रहा, किन्तु उसकी मूल आत्मा लोक सहभागिता और सामूहिक निर्णय प्रक्रिया ही रही है। प्राचीन काल में बिहार क्षेत्र को मगध, वैशाली, मिथिला आदि के रूप में जाना जाता था, जहाँ गणतंत्रात्मक व्यवस्था सक्रिय रूप में विद्यमान थी। वैशाली, जिसे दुनिया का प्रथम गणराज्य माना जाता है, वहाँ "सभा" और "समिति" जैसे संस्थान ग्राम स्तर पर निर्णय लेने के माध्यम थे। महात्मा बुद्ध के समय में भी बिहार में ष्संग्रहष और 'गण परिषद' जैसी संस्थाओं की उपस्थिति इस ओर संकेत करती है कि ग्रामों में सामूहिक निर्णय लेने की परंपरा अत्यंत सुदृढ़ थी। मिथिला क्षेत्र में "पंच परमेश्वर" की अवधारणा सामाजिक न्याय और सामूहिक विवेक पर आधारित थी, जो स्थानीय विवादों के समाधान का माध्यम थी। ये पंचायतें राजकीय हस्तक्षेप से प्रायः मुक्त थीं और सामाजिक आचार–संहिताओं के अंतर्गत कार्य करती थीं। मध्यकाल में मुस्लिम शासन के दौरान पंचायत व्यवस्था कमजोर पड़ी, लेकिन स्थानीय निकायों की भूमिका पूर्णतः समाप्त नहीं हुई।[2] भूमि व्यवस्था, सिंचाई, स्थानीय कर और विवाद निपटारे में ग्राम सभाएँ यथासंभव कार्यरत रहीं। विशेषकर मिथिला और मगध के ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों की सांस्कृतिक महत्ता बनी रही, यद्यपि उनका राजनीतिक स्वरूप सीमित होता गया।

ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही बिहार की पारंपरिक पंचायतें क्रमशः क्षीण होने लगीं। 1793 में लॉर्ड कॉर्नवालिस द्वारा स्थायी बंदोबस्त लागू करने के पश्चात् जमींदारी व्यवस्था के उदय ने ग्रामीण शासन व्यवस्था को पूरी तरह प्रभावित किया। पारंपरिक पंचायतें भूमि स्वामी वर्ग के प्रभाव में आ गईं और धीरे–धीरे सामाजिक न्याय के स्थान पर वर्गीय नियंत्रण के उपकरण बन गईं। किन्तु 1882 में लॉर्ड रिपन द्वारा स्थानीय स्वशासन की नीति अपनाई गई, जिसने पुनः स्थानीय निकायों को वैधानिक स्वरूप देना प्रारंभ किया।[3] 1885 में बिहार में जिला बोर्ड तथा स्थानीय बोर्ड गठित किए गए, जिन्होंने ग्रामीण प्रशासन में सीमित ही सही, पर जन सहभागिता की प्रक्रिया को पुनर्जीवित किया। 1919 के भारत सरकार अधिनियम के तहत स्वशासन को और अधिक प्रोत्साहन मिला और बिहार में अनेक स्थानीय निकायों की स्थापना हुई। तथापि, यह स्वशासन अंग्रेजों की नौकरशाही के

अधीन था और इसकी कार्यक्षमता सीमित थी।[4]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के संविधान ने अनुच्छेद 40 में स्पष्ट किया कि 'राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करेगा और उन्हें स्वायत्तता प्रदान करेगा।' इस निर्देश के अनुरूप बिहार सरकार ने 1950 के दशक में पंचायतों के गठन का कार्य आरंभ किया। 1952 में पहली बार बिहार में त्रिस्तरीय पंचायती प्रणाली लागू की गई, जिसमें ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद का निर्माण किया गया। 1959 में बिहार पंचायत राज अधिनियम लागू हुआ, जिसने पंचायतों को विधिसम्मत ढांचा प्रदान किया। यद्यपि प्रारंभिक वर्षों में पंचायतों को विकास योजनाओं का क्रियान्वयन करने का अधिकार मिला, परंतु उनकी वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वायत्तता अत्यंत सीमित रही। 1977 में जनता पार्टी सरकार ने पंचायतों के पुनरुद्धार के प्रयास किए, परंतु राजनीतिक अस्थिरता और नौकरशाही के दबाव के कारण यह प्रक्रिया ठहर गई। 1980 के दशक में केंद्र व राज्य सरकारों ने पुनः पंचायती राज को सशक्त बनाने की दिशा में कार्य आरंभ किए। इस समय तक यह स्पष्ट हो गया था कि ग्रामीण विकास की सफलता पंचायती संस्थाओं की सक्रियता पर निर्भर करती है। 1989 में राजीव गांधी सरकार ने पंचायती राज को संविधानिक दर्जा देने का प्रयास किया, जो बाद में 73वें संविधान संशोधन (1992) के रूप में साकार हुआ। यद्यपि यह संशोधन 1993 में लागू हुआ, परंतु 1990 के दशक की शुरुआत तक बिहार में पंचायती प्रणाली राजनीतिक और प्रशासनिक चर्चा का प्रमुख विषय बन चुकी थी।[5]

73वाँ संविधान संशोधन और उसका प्रभाव

भारतीय लोकतंत्र की गहराई को मजबूत करने के उद्देश्य से 1992 में पारित 73वें संविधान संशोधन अधिनियम को स्थानीय स्वशासन की दिशा में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर माना जाता है। यह अधिनियम, जो 24 अप्रैल 1993 से लागू हुआ, पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान करता है और भारत के ग्रामीण जन–जीवन में सत्ता के विकेंद्रीकरण को सुनिश्चित करता है। बिहार जैसे सामाजिक और राजनीतिक रूप से सक्रिय राज्य में इस संशोधन का प्रभाव बहुआयामी रहा है। इसने न केवल प्रशासनिक ढांचे को नीचे तक विस्तारित किया, बल्कि वंचित वर्गोंकृविशेषतः महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गकृको राजनीतिक भागीदारी का अवसर भी प्रदान कियज्ञं इस संशोधन के माध्यम से भारतीय संविधान में भाग प्प जोड़ा गया, जिसमें अनुच्छेद 243 से 243–ओ तक पंचायती राज व्यवस्था की व्यवस्था की गई। संशोधन के अंतर्गत पंचायतों को तीन स्तरोंकृग्राम, मध्य (खंड/जनपद) और जिला पर स्थापित करने का प्रावधान किया गया। प्रत्येक पंचायत का कार्यकाल पाँच वर्षों के लिए निर्धारित किया गया और नियमित अंतराल पर चुनाव की बाध्यता भी स्थापित की गई। एक अन्य महत्वपूर्ण प्रावधान यह था कि पंचायतों को योजनाओं के निर्माण और आर्थिक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का अधिकार प्राप्त हुआ। राज्य वित्त आयोग और राज्य निर्वाचन आयोग की स्थापना की गई ताकि वित्तीय पारदर्शिता और स्वतंत्र निर्वाचन सुनिश्चित हो सके। सबसे क्रांतिकारी पहलु था आरक्षण की व्यवस्था, जिसके तहत अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं को पंचायतों में स्थान आरक्षित किए गए।[6]

बिहार में 73वें संशोधन का क्रियान्वयन 2001 में हुआ जब राज्य में पंचायती चुनाव आयोजित किए गए। इस चुनाव ने ग्रामीण लोकतंत्र की पुनर्स्थापना का कार्य किया, जो पिछली बार 1978 में देखा गया था। 23 वर्षों के अंतराल के पश्चात पंचायतें पुनः सक्रिय हुईं और एक नई पीढ़ी के जनप्रतिनिधियों का उदय हुआ। संविधान संशोधन के लागू होने के साथ ही बिहार में पंचायतों की भूमिका केवल योजना कार्यान्वयन तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह सामाजिक न्याय, स्थानीय प्रशासन, और शासन की पारदर्शिता की दिशा में भी अहम बन गई। पंचायती राज अधिनियम, 2006 ने इसमें और मजबूती प्रदान की तथा पंचायत प्रतिनिधियों को वित्तीय और प्रशासनिक स्वायत्तता का विस्तार किया। इसके परिणामस्वरूप पंचायतें केंद्र और राज्य सरकार की अनेक योजनाओं का सफल क्रियान्वयन करने में सक्षम हो सकीं, जैसे कि मनरेगा, इंदिरा आवास योजना, शौचालय निर्माण योजना आदि। 73वें संविधान संशोधन की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि यह रही कि इसने पहली बार स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं को 33ः आरक्षण की व्यवस्था दी। बिहार सरकार ने इसे एक कदम और आगे बढ़ाते हुए महिलाओं के लिए 50ः आरक्षण का प्रावधान किया, जो देश में अपने आप में एक मिसाल है।[7] इसके परिणामस्वरूप लाखों महिलाएं राजनीतिक मंच पर आईं, जिससे न केवल उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ, बल्कि प्रशासनिक कार्यों में भी उनकी भागीदारी बढ़ी। इसी प्रकार, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया गया, जिससे दलित वर्ग से आने वाले

प्रतिनिधियों को भी निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्थान मिला। 2006 के पश्चात अन्य पिछड़ा वर्ग को भी पंचायतों में आरक्षण प्रदान किया गया, जिससे सामाजिक न्याय की अवधारणा को सशक्त आधार प्राप्त हुआ। ये आरक्षण न केवल प्रतिनिधित्व का माध्यम बने बल्कि हाशिए पर खड़े समुदायों के लिए नेतृत्व की एक नई दिशा भी बने।[8]

बिहार में पंचायती चुनाव (2001–2015)

बिहार में पंचायती चुनावों का इतिहास न केवल ग्रामीण लोकतंत्र की पुनर्स्थापना का प्रमाण है, बल्कि यह राज्य के सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक परिवर्तन का भी साक्षी रहा है। 73वें संविधान संशोधन के लागू होने के पश्चात पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा मिलने के बावजूद बिहार में पंचायती चुनावों का आयोजन लंबे समय तक नहीं हो सका। लगभग 23 वर्षों की प्रतीक्षा के बाद, वर्ष 2001 में बिहार में प्रथम त्रिस्तरीय पंचायती चुनाव संपन्न हुए, जिसने लोकतंत्र की जड़ों को ग्राम स्तर तक पुनर्स्थापित किया। बिहार में पिछली बार पंचायत चुनाव 1978 में हुए थे। इसके बाद लगभग दो दशकों तक पंचायती राज व्यवस्था लगभग निष्क्रिय हो गई। इस निष्क्रियता का प्रमुख कारण राजनीतिक अस्थिरता, प्रशासनिक उदासीनता तथा कानूनी अस्पष्टता थी। वर्ष 1993 में बिहार पंचायती राज अधिनियम लागू तो हुआ, लेकिन उपयुक्त नीतिगत निर्णयों के अभाव में इसका क्रियान्वयन टलता रहा। वर्ष 2000 के अंत तक राज्य में न्यायपालिका के हस्तक्षेप और सामाजिक संगठनों के दबाव के कारण चुनाव की प्रक्रिया को अनिवार्य रूप से आरंभ करना पड़ा। उच्च न्यायालय के निर्देशों के पश्चात अंततः अप्रैल 2001 में राज्य में पंचायत चुनाव संपन्न हुए। इन चुनावों ने ग्राम स्तर पर लोकतंत्र को जीवंत किया और शासन की एक नई धारा का आरंभ किया। 2006 में बिहार सरकार ने पंचायती चुनावों को अधिक सशक्त और पारदर्शी बनाने की दिशा में कई सुधारात्मक उपाय किए। इस चुनाव में पहली बार बिहार पंचायत राज अधिनियम, 2006 के अंतर्गत चुनाव संपन्न हुए। यह अधिनियम अधिक स्पष्टता, उत्तरदायित्व और पंचायती प्रतिनिधियों के अधिकारों को परिभाषित करता था। इस दौरान चुनाव प्रक्रिया में तकनीकी नवाचार जैसे कि मतदाता पहचान पत्रों का उपयोग, विस्तृत मतदाता सूची, और व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों को शामिल किया गया।[9]

2011 के पंचायत चुनाव में एक ऐतिहासिक पहल की गईकृमहिलाओं को पंचायतों में 50ः आरक्षण दिया गया, जिससे इन चुनावों में महिला प्रत्याशियों की भागीदारी अभूतपूर्व रही। साथ ही चुनाव प्रक्रिया में पारदर्शिता बनाए रखने के लिए राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा मॉनिटरिंग टीमों, शिकायत निवारण तंत्र और निर्वाचन व्यय की निगरानी व्यवस्था को भी लागू किया गया। इन चुनावों में मतदाता जागरूकता अभियानों की भूमिका भी उल्लेखनीय रही, जिसने ग्रामीण जनता की भागीदारी को प्रोत्साहित किया। 2001 से 2015 के मध्य संपन्न पंचायत चुनावों ने बिहार के सामाजिक ताने–बाने में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। पहले जहाँ पंचायतों में ज़मींदार और सामाजिक रूप से प्रभावशाली वर्गों का वर्चस्व रहा करता था, वहीं इन चुनावों में आरक्षण नीति के माध्यम से महिलाओं, अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों की भागीदारी ने सत्ता के सामाजिक वितरण को नया स्वरूप दिया। महिलाओं की भागीदारी विशेष रूप से उल्लेखनीय रही। 2011 में आरक्षण बढ़ाकर 50 प्रतिशत किए जाने के बाद लाखों महिलाएं राजनीतिक रूप से सक्रिय हुईं। यद्यपि प्रारंभ में कुछ स्थानों पर "प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व" अर्थात् पतियों या परिवारजनों द्वारा सत्ता संचालन की प्रवृत्ति देखी गई, परंतु धीरे–धीरे महिलाओं ने प्रशासनिक अनुभव अर्जित कर नेतृत्वकारी भूमिका निभानी शुरू कर दी। इसी प्रकार, दलित और पिछड़े वर्गों से आने वाले प्रतिनिधियों ने पंचायतों में अपने अधिकारों की समझ और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं को नया आयाम दिया। इन प्रतिनिधियों ने शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, स्वच्छता तथा सड़क निर्माण जैसी योजनाओं को अधिक प्राथमिकता दी, जिससे ग्रामीण जनजीवन की गुणवत्ता में सुधार आया।[10]

भारत में पंचायती राज प्रणाली को लोकतंत्र की जड़ माना जाता है, जहाँ जनप्रतिनिधियों के माध्यम से ग्राम स्तर पर प्रशासन और विकास को सशक्त रूप में कार्यान्वित किया जाता है। बिहार में इस प्रणाली का ढाँचा त्रिस्तरीय है– ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद। यह ढाँचा 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा स्थापित किया गया था, और बिहार में इसका क्रियान्वयन विशेष रूप से 2001 के पश्चात सक्रिय रूप में हुआ। इस व्यवस्था का उद्देश्य न केवल प्रशासनिक विकेंद्रीकरण था, बल्कि सामाजिक न्याय, जनसहभागिता और विकास की गति को तीव्र करना भी था।[11]

पंचायती राज व्यवस्था की प्रथम इकाई ग्राम पंचायत होती है, जो एक या एक से अधिक ग्रामों को सम्मिलित करती है। ग्राम पंचायत के अध्यक्ष को श्मुखियाश कहा जाता है, जिसे सीधे ग्रामीण मतदाता चुनते हैं। पंचायत

में वार्ड सदस्य, उपमुखिया और पंचायत सचिव होते हैं। यह इकाई जल, सड़क, स्वच्छता, प्राथमिक शिक्षा, राशन वितरण और अन्य ग्रामीण सेवाओं के संचालन में प्रमुख भूमिका निभाती है। दूसरी इकाई पंचायत समिति है, जिसे प्रखंड स्तर पर गठित किया जाता है। यह पंचायतों के समन्वय का कार्य करती है तथा विकास योजनाओं के निर्माण, निगरानी और क्रियान्वयन में भागीदारी करती है। पंचायत समिति में प्रमुख, उपप्रमुख, प्रखंड विकास पदाधिकारी तथा निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधि शामिल होते हैं। तीसरी और सर्वोच्च इकाई जिला परिषद होती है, जो पूरे जिले की पंचायतों का संचालन, निरीक्षण और मार्गदर्शन करती है। इसमें जिला परिषद अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, जिला अधिकारी, विभागीय पदाधिकारी, और निर्वाचित प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं। इसका कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, सड़क निर्माण, सिंचाई तथा रोजगार योजनाओं का समन्वय शामिल है।

पंचायती प्रतिनिधियों को प्रशासनिक, वित्तीय और विधायी शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, जिनका प्रयोग वे अपने क्षेत्र में विकास और जनसेवा के लिए करते हैं। मुखिया और वार्ड सदस्य को अपने–अपने क्षेत्र में योजना निर्माण, अनुमोदन, सामाजिक अंकेक्षण, और योजना क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका निभानी होती है। वे गांव स्तर पर होने वाले कार्यों जैसे सड़क मरम्मत, नल जल योजना, शिक्षा, राशन वितरण, वृद्धावस्था पेंशन आदि के सफल संचालन के लिए उत्तरदायी होते हैं। पंचायत समिति के प्रमुख और सदस्यों का कार्य क्षेत्र व्यापक होता है। ये शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, जल प्रबंधन, ग्रामीण उद्योग, पशुपालन आदि से जुड़ी योजनाओं की निगरानी करते हैं। इसी प्रकार, जिला परिषद अध्यक्ष और सदस्य जिला स्तर पर विभागीय योजनाओं को निर्देशित करते हैं और प्रशासनिक इकाइयों के बीच समन्वय स्थापित करते हैं। हालांकि विधायी शक्तियाँ सीमित हैं, लेकिन इन प्रतिनिधियों के पास शिकायतों की सुनवाई, ग्राम सभाओं के आयोजन, योजनाओं में भ्रष्टाचार की जांच और रिपोर्टिंग जैसे महत्वपूर्ण कार्य करने की जिम्मेदारी होती है। साथ ही, उन्हें अपने क्षेत्र के विकास के लिए जनसंपर्क बनाए रखने, सुझाव एकत्र करने और बजट प्रस्ताव तैयार करने का भी अधिकार प्राप्त है।

पंचायतों की कार्यक्षमता सीधे उनकी वित्तीय स्थिति पर निर्भर करती है। संविधान के अनुसार, प्रत्येक राज्य को एक राज्य वित्त आयोग का गठन करना होता है, जो पंचायती संस्थाओं को वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने की संस्तुति करता है। बिहार में भी प्रत्येक पंचायती इकाई को राज्य सरकार से अनुदान मिलता है, जिसमें केन्द्र एवं राज्य योजनाओं का हिस्सा, स्वास्थ्य मिशन, मनरेगा, 14वाँ/15वाँ वित्त आयोग के अंतर्गत राशि इत्यादि शामिल होती है। इसके अतिरिक्त पंचायतें स्थानीय कर जैसे हाट–बाजार कर, भवन कर, जल कर आदि वसूल कर स्वयं की आमदनी बढ़ा सकती हैं, यद्यपि व्यावहारिक तौर पर अधिकांश पंचायतें इन साधनों का समुचित प्रयोग नहीं कर पातीं। इसका मुख्य कारण हैकृकर वसूली तंत्र की कमजोरी, प्रशासनिक प्रशिक्षण की कमी और जनजागरूकता का अभाव। वित्तीय संसाधनों के सीमित होने के बावजूद, बिहार की पंचायतों ने कई योजनाओं में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है, जैसे मनरेगा कार्यों का निष्पादन, आवास योजना, नल–जल योजना इत्यादि। परंतु यह भी सत्य है कि पंचायतों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए उनके राजस्व स्रोतों को सुदृढ़ करना आवश्यक है। साथ ही, बजट निर्माण, व्यय और अंकेक्षण की पारदर्शी प्रणाली की आवश्यकता है ताकि वित्तीय अनुशासन और जनता का विश्वास दोनों सुनिश्चित हो सकें।[12]

पंचायती राज प्रणाली में सामाजिक न्याय और सहभागिता

बिहार में पंचायती राज प्रणाली (1990–2015) के अंतर्गत सामाजिक न्याय और सहभागिता के मूल्य न केवल सैद्धांतिक आधार पर प्रतिष्ठित हुए, बल्कि व्यावहारिक स्तर पर भी इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के लागू होने के पश्चात पंचायती संस्थाओं को न केवल संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई, बल्कि सामाजिक रूप से वंचित वर्गों के लिए आरक्षण व्यवस्था के माध्यम से राजनीतिक अधिकारों की वास्तविक प्राप्ति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। यह व्यवस्था केवल प्रशासनिक विकेंद्रीकरण नहीं थी, बल्कि समाज के हाशिए पर स्थित समूहों को निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी का अवसर देने का एक सशक्त माध्यम भी सिद्ध हुई। बिहार में पंचायती राज के अंतर्गत महिलाओं को आरक्षण देना एक ऐतिहासिक पहल रही है। 2006 में राज्य सरकार ने देश में पहली बार पंचायतों में 50: सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दीं। यह निर्णय महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम था। इसके परिणामस्वरूप लाखों महिलाएं पंचायतों में निर्वाचित होकर आईं।[13]

प्रारंभिक दौर में भले ही कई जगहों पर पुरुष परिजन ही निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की भूमिका निभाते दिखे, लेकिन समय के साथ महिलाओं ने न केवल प्रशासनिक कार्यों में दक्षता प्राप्त की, बल्कि सार्वजनिक मंचों

पर अपनी उपस्थिति से सामाजिक परंपराओं को भी चुनौती दी। महिला मुखियाओं और वार्ड सदस्यों ने मनरेगा, राशन वितरण, पोषण कार्यक्रम और बालिका शिक्षा जैसे मुद्दों पर सकारात्मक हस्तक्षेप कर विकास प्रक्रिया को संवेदनशील बनाया। इसके अतिरिक्त, महिला प्रतिनिधियों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम, महिला सशक्तिकरण मिशन, और स्वयं सहायता समूहों के साथ समन्वय जैसे उपायों ने उन्हें निर्णय प्रक्रिया में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए तैयार किया। आज पंचायतें महिला नेतृत्व की प्रयोगशाला बन चुकी हैं, जहाँ परंपरागत जेंडर भूमिकाओं को पीछे छोड़ महिलाएं विकास की दिशा तय कर रही हैं।

पंचायती राज प्रणाली में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण की व्यवस्था ने राजनीतिक भागीदारी की दिशा में एक नया अध्याय जोड़ा। बिहार जैसे राज्य में जहाँ जातिगत संरचना राजनीतिक विमर्श का प्रमुख आधार रही है, वहाँ इन वर्गों को पंचायती संस्थाओं में प्रतिनिधित्व मिलने से उनकी सामाजिक हैसियत में उल्लेखनीय बदलाव आया। दलित और पिछड़ी जातियों के प्रतिनिधियों ने सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध न केवल आवाज उठाई, बल्कि प्राथमिक शिक्षा, स्वच्छता, पेयजल और रोजगार गारंटी जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से अपने समुदायों के उत्थान का कार्य भी किया। यह भागीदारी न केवल प्रतीकात्मक रही, बल्कि प्रशासनिक व वित्तीय निर्णयों में भी इन वर्गों की वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित हुई। दलित महिलाओं का पंचायतों में प्रतिनिधित्व दोहरे सामाजिक उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष का प्रतीक बना। उन्होंने जमीन विवाद, छुआछूत, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी समस्याओं को ग्राम स्तर पर प्राथमिकता दी, जिससे सामाजिक न्याय की अवधारणा और अधिक सशक्त हुई।

1990 के बाद बिहार की राजनीति में आए बदलावों के साथ–साथ ग्रामीण जनमानस में राजनीतिक जागरूकता भी तीव्र हुई। पंचायती चुनावों में बढ़ती भागीदारी, चुनावी मुद्दों पर बहस, प्रत्याशियों का मूल्यांकन तथा मीडिया की पहुँच ने ग्रामीण जनता को अधिक सचेत और सक्रिय बनाया। ग्राम सभाओं की अवधारणा ने नागरिकों को योजनाओं की निगरानी और उनके क्रियान्वयन में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर प्रदान किया। मनरेगा जैसे कार्यक्रमों में पारदर्शिता और सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया ने ग्रामीण जनता में अधिकारों की चेतना को विकसित किया। चुनावों के दौरान जाति, वर्ग और धर्म जैसे पारंपरिक कारकों के साथ–साथ विकास, सेवा और पारदर्शिता जैसे मुद्दों पर भी विचार किया जाने लगा। राजनीतिक दलों द्वारा पंचायत चुनावों को गंभीरता से लिया जाना, प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन और प्रचार के नए माध्यमों का उपयोग इस बढ़ती चेतना का प्रमाण हैं। यह स्पष्ट है कि पंचायती व्यवस्था के माध्यम से बिहार का ग्रामीण समाज पहले की तुलना में अधिक जागरूक, उत्तरदायी और सहभागी हुआ है।[14]

निष्कर्ष

बिहार में पंचायती राज प्रणाली (1990–2015) कश्रप्ज्ञस ा समग्र अध्ययन यह सिद्ध करता है कि यह व्यवस्था केवल प्रशासनिक ढांचे का विस्तार नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना के सामाजिक धरातल पर प्रसार का प्रतीक रही है। इस त्रैतीय ढांचे ने जहां एक ओर ग्राम स्तर पर सत्तातंत्र को स्थायित्व प्रदान किया, वहीं दूसरी ओर सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण और हाशिए पर खड़े समुदायों को नेतृत्व देने का अवसर भी प्रदान किया। पंचायती व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास को समझे बिना इसके वर्तमान स्वरूप की समीक्षा अधूरी होगी। बिहार की पंचायत परंपरा का आधार अत्यंत प्राचीन है, जिसकी झलक वैदिक काल की श्सभाश और श्समितिश तथा वैशाली के गणतंत्र में मिलती है। मध्यकाल में जहाँ यह परंपरा कमजोर हुई, वहीं ब्रिटिश काल में स्थानीय स्वशासन की कुछ औपचारिक इकाइयाँ सामने आईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पंचायती राज को संस्थागत स्वरूप देने का प्रयास प्रारंभ हुआ, परंतु 73वें संविधान संशोधन (1992) ने इसे संवैधानिक आधार प्रदान किया। बिहार में 2001 से पंचायती चुनावों का नियमित आयोजन हुआ, जिससे यह व्यवस्था व्यावहारिक धरातल पर पुनः स्थापित हुई। 2001 से 2015 तक के कालखंड में पंचायती संस्थाओं ने शासन प्रणाली के विकेंद्रीकरण, स्थानीय विकास और प्रशासनिक पारदर्शिता के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियाँ दर्ज कीं। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद के माध्यम से योजनाओं का क्रियान्वयन, जन–सुनवाई की प्रक्रियाएँ, और समाज के विविध वर्गों की भागीदारी इस व्यवस्था की सशक्तता को दर्शाती है। पंचायती राज की उपलब्धियाँ जितनी महत्त्वपूर्ण रही हैं, उतनी ही गहरी इसकी चुनौतियाँ भी हैं। भ्रष्टाचार, राजनीतिक हस्तक्षेप, वित्तीय निर्भरता और प्रशासनिक उदासीनता ने इसकी कार्यप्रणाली को प्रभावित किया है। इन समस्याओं के समाधान के लिए कुछ ठोस सुधारात्मक सुझाव आवश्यक हैं। सुधारों के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था को न केवल प्रशासनिक रूप से

सुदृढ़ किया जा सकता है, बल्कि इसे एक संवेदनशील, सहभागी और सामाजिक न्याय पर आधारित तंत्र के रूप में विकसित किया जा सकता है।

Author's Declaration:

The views and contents expressed in this research article are solely those of the author(s). The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible for any errors, ethical misconduct, copyright infringement, defamation, or any legal consequences arising from the content. All legal and moral responsibilities lie solely with the author(s).

संदर्भ सूची

1. सिंह, सी. (2012). बिहार में ग्राम पंचायत एवं सुशासन, पटना, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
2. गुप्त, व. (2015). भारत में पंचायती राज. दिल्ली, सुरभि प्रकाशन।
3. मीना, ल. (2011). पंचायती राज तथा जन प्रतिनिधित्वः दशा एवं दिशा. जयपुर, लिट्रेरी सर्किल।
4. मिश्रा, म. कु. (2010). पंचायती राज संस्थाएँः अतीत, वर्तमान और भविष्य. दिल्ली, कल्पना प्रकाशन।
5. मलिक, स. स. (2002). दि न्यू पंचायती राज. जयपुर, आलेख पब्लिशर्स।
6. पंवार, म. (2019). पंचायती राज और ग्रामीण विकास. नई दिल्ली, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी।
7. शर्मा, र. (2012). ग्रामीण विकास एवं नियोजन. नई दिल्ली, रावत प्रकाशन।
8. शर्मा, ह. (2013). भारत में स्थानीय प्रशासन. जयपुर, कॉलेज बुक डिपो।
9. अरोड़ा, पूरन चन्द, (2000), बिहार पंचायत राजः विधि एवं विधान, पाहूजा लॉ हाउस, पटना।
10. वर्मा, रवीन्द्र कुमार, (2004), डीसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग एंड पंचायत सिस्टम, वर्कशॉप ऑन डीसेंट्रलाइज्ड प्लानिंग एंड पंचायत राज इन्सटीच्यूशन इन बिहार, ए. एन. सिन्हा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल स्टडीज, पटना।
11. मुखर्जी, अमिताभ, (1994), डिसेंट्रलाइजेशनः पंचायत्स इन दी नाइनटीज, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।
12. सिन्हा, शोभना (2020). पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी, बिहार का एक केस स्टडी, जर्नल ऑफ पब्लिक अफेयर्स, 20(4)।
13. अनिल एस सुतार (2017), भारत में पंचायती राज के पैटर्न, भारत की मैकमिलन कंपनी, नई दिल्ली
14. ई. ए. नारायण (2018), पंचायती राज प्रशासन के लिए एक पुस्तिका, अशोक कुमार मित्तल, नई दिल्ली।

Cite this Article-

'सिंधी सूर्य, डॉ0 स्वर्ण मणि', 'बिहार में पंचायती राज प्रणाली (1990–2015): एक सर्वेक्षण', *Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:06, June 2025.*

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/

DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i60006

Published Date- 04 June 2025